Cosmos Multidisciplinary Research E-Journal
Online Available at www.cmrj.in
Recognized International Peer Reviewed Journal
ISSN No. 2456-1665

'महाभोज' उपन्यास: पाठकों की दृष्टि से अध्ययन

शेजवळ अनिता रतनराव
(शोध छात्रा, हिंदी)

पाठक जब 'महाभोज' का अध्ययन करते हैं तब उनका ध्यान मन्नू भण्डारी व्दारा लिखे पहल वाक्य पर जाता है। यथा 'इस उपन्यास में वर्णित घटनाएँ काल्पनिक है।' उपन्यास का कथा संसार कल्पना प्रसूत ही तो होता है परन्तु इतना नहीं कि जितना खत्री के या गहमरी के जमाने में होता था।

उपन्यास का कथा संसार यथार्थ से पुर्णत: जूडा होता है। यह बात मन्नूजी ने इसलिए लिखी है कि उनके उपन्यास का कोई पात्र वास्तविक जगत् के किसी पात्र का प्रतिरुप, पैरोडी या केरिकेचर न जान पड़े। कारण दा साहब का चरित्र उन्होंने अपने बचपन में अजमेर में देखे किसी व्यक्ति से मिलता-जुलता है। 'महाभोज' की कथा किसी हिन्दी भाषा राज्य की राजधानी और वहाँ से लगभग बत्तीस किलोमीटर की दूरी पर स्थित सरोहा नामक गाँव में घटी है। उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, बिहार आदि में सरोहा जैसे कई गाँव मिल सकते हैं। सुकूल बाबू की राजनीतिक सभा में एक लाख से अधिक लोग इकठ्ठे होते हैं। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि गाँव की संख्या कम से कम ढाई लाख होनी चाहिए। इतने बड़े गांव तो बिहार और उत्तर प्रदेश में है नहीं। लेखिका ने लिखा है सरोहा जाटों का गाँव है जिनकी आबादी ३५ प्रतिशत है। हरिजनों और अन्य जातीयाँ की जनसंख्या ६५ प्रतिशत है। इतना बड़ा गाँव और वहाँ सें थाना चार-पाँच मील की दूरी पर और वह भी तीस गाँव का थाना। थानेदार भी स्वयं को गाँव का ही थानेदार कहलाता है।

'महाभोज' का कथा संसार बहुत बड़ा नहीं है और न पूरे रुप से विश्वासु। मन्नू भण्डारी की इस कलाकृति में भूगोल और काल कें अंकन की बहुत-सी कमियाँ हैं। 'महाभोज' उपन्यास कम नाटक अधिक है। इसलिए जब इसका नाट्य रुपान्तर किया तब मन्नूजी की शक्ति का परिचय मिला। नाटक में परिवेश की उतनी आवश्यकता नहीं होती जितना उपन्यास में होती है। 'महाभोज' के पात्रों का जमघट बड़ा सजीव और यथार्थ है। दा साहब का चरित्र एक काईया और मूल्यहीन राजनेता के रुप में जो उभारा है, उसमें आज भी कईयों के चेहरे झांक जाते हैं। उनका आचरण, व्यवहार और घटीया सोच आदि को बेहद सफल अंकन लेखिका ने किया है। सुकूल बाबू के चरित्र का अंकन करते समय लेखिका की मनोवैज्ञानिक सूझबूझ कमाल की है। उनकी भाषण की क्षमता दा साहब से बेहतर है। एक लाख लोगों की रॅली का वर्णन न तो उपन्यास में किया है न नाटक में। नाटक में तो आभास ही दिया है। बयान लेने का प्रसंग अति यथार्थवादी और उपन्यास और नाट्यरुपान्तर दोनों में प्रभावशाली अंकित हुआ है। मुफ्त की दावतों में ग़ैर जिम्मेदाराना हरकतें करनेवाला मध्यवर्गीय समाज, जाटों के नेताओं की उज्जड प्रतिक्रियाएँ, पीडीत और लाचार मज़दूरों की विवशताएँ आदि का अंकन लेखिकाने बेहद सजगता से किया है। नाट्यरुपान्तर के शब्दों व्दारा जो बिम्ब उभारे हैं वे पाठकों के मन में अंकित हो जाते हैं।

दा साहब का बाह्य वर्णन इतना सटिक किया है कि डायरेक्टर को चाहिए कि ऐसा ही पात्र चुने। उनके निजी कमरे का मन्नूजी ने विस्तार कर मानो डायरेक्टर को मंच की साज-सज्जा की सूचियाँ प्रदान की है। दा साहब जैसे मुख्यमंत्री लखन जैसे अति साधारण व्यक्ति से मनमाने आरोप सुनते हैं यह बड़ा अविश्वसनीय लगता है। माना की वह उनका विश्वसनीय पात्र है। परन्तु स्तर भी तो होना चाहिए। परन्तु इसी वार्तालाप के सहारे लेखिकाने मुख्यमंत्री की योजनाओं को दर्शकों के सामने रखा है। यह वार्तालाप उपन्यास को नाटक के करीब ले जाता है। जुम्मन पहलवान के तीस चालीस पट्ठे गाँव में किस गुंडागर्दी को रोकने के लिए दण्ड पेलते हैं। सिर्फ इलेक्शन के लिए। वैसे तो मज़दूरों के लिए तो अकेला जोरावर काफ़ी है। मुस्लमानों की बस्ती का न नामोनिशान है और न उनके घर बार का। न कभी इस गाँव में गुंडो ने मारपीट की है। फिर उन्हें लेखिकाने क्यों लाया है?

सुकूल बाबू का भाषण तो पूरा नाटकीय है। वे मंजे हुए वक्ता है, इसलिए जनता में से उछाले गए सवाल का जवाब बिना नाराज हुए तुरत्न देते हैं। उन्हीं की बातों से पता चलता है कि आगजनी के समय नौ लोग जलकर खाक हो गये थे। मन्नू भण्डारी ने पता नहीं कैसे बाजी पलटवा दी। अन्यथा सारे हरिजनों और अन्य जनजातीयों के वोट सुकूल बाबू को मिलने चाहिए थे। सुकूल बाबू की तुलना में लखन अति साधारण आदमी था। उसमें किसी भी प्रकार की राजनेता की योग्यता नहीं थी।

अप्पा साहब का भी चरित्र बेकार में लाया गया है। आजकल पार्टी के अध्यक्ष को कौन पूछता है। परन्तु इसके व्दारा मन्नूजी दा साहब के विरोध में पार्टी के ही लोग क्या सोचते हैं? इसे दर्शाने लाया है। अप्पासाहब ने जोरावर के विषय में दा साहब को तो कुछ आदेश दिए नहीं और न लखन की उम्मीदवारी पर अपनी नाराजगी प्रगट की है। कारण किसी भी उम्मीदवार को पार्टी अध्यक्ष से अनुमति लेनी चाहिए।

उपन्यास के लगभग ३५ ते ४० पृष्ठ लेखिकाने सक्सेना व्दारा लिए गये बयानों पर खर्च किए है। 'अ-लगाव' कहानी का ही यह विस्तार था और उपन्यास का केंद्र बिन्दु भी यही था। यह पूरा अंश नाटकीय है और पूरा की पूरा संवादो पर आधारित है। मन्नूजी ने इसे मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के आधार पर पात्रों को संवादो के माध्यम से परखने की कोशिश की है। एस.पी. कोई मामुली आदमी नहीं होता, पुलिस का बहुत बड़ा अफसर होता है। ऐसे बड़े अफसर के सामने नज़र मिलाते ही बिन्दा का थड़ाक से थूँक देना बदतमिज़ी का प्रमाण है। फिर भी सक्सेना का कुछ नहीं कहना बड़ा अजीब लगता है। थानेदार का यूं सोचना ग़लत नहीं लगता कि जनखा अफसर है, देहातिनों की गालियाँ खा रहा है बैठा-बैठा। बिन्दा का गर्जन -तर्जन जब ज़्यादा बढ़ गया तब सक्सेना को कहना पड़ा कि वह शराफत से पेश आ रहा है तो उम्मीद करता है कि वह भी शराफत से पेश आये। बिन्दा ने तो घटना घटने के पहले ही उसका अंत बता दिया। उपन्यासकार को ऐसा नहीं करना चाहिए। बिन्दा ने कहा कि थानेदार ने रिपोर्ट तैयार कर दी। भरी सभा में दा साहब ने कह दिया कि बिसू ने आत्महत्या की। 'मशाल' वालों ने छाप दिया। तब अब कुछ होना जाना नहीं है। बयान लेने का नाटक करने से फायदा क्या? एक एस.पी. को गाव का साधारण आदमी यह कैसे पूछ सकता है कि ''जुर्म की पहचान रह गई है आप लोगों को? . . . ज़िन्दा आदमियों को जला दो...मार दो...यह सब जुर्म नहीं है न आपकी नज़रों में?'' तहक़ीकात को वह बेवकुफ बनाना कहता है। सक्सेना सारी बातें सुनकर लेता है। अफसरों को ऐसी भाषा और आरोप सुनने की आदत नही है। मन्नूजीने नाटकीय आवेश के लिए भले ही यह प्रसंग गढ़ा हो, यथार्थ में ऐसा संभव नहीं।

'महाभोज' आठवे दशक के उतरार्ध के राजनीतिक परिवेश पर आधारीत उपन्यास है। यह एक बहुत ही निराशाजनक, मूल्यों की धज्जियाँ उडानेवाला क्रूर और बेरहम कथा- संसार है। 'बिसू की मौत' और हरिजनों पर होनेवाले अत्याचारों के विरोध में सेंकडों पोस्टर लिए हजारों लोगों को रैली के समय सुकूल बाबू ने खड़ा किया था। परन्तु अंत में क्या हुआ। उन्हीं हरिजनों ने दा साहब को ही वोट दिए। लोग थोडे से पैसों पर कैसे बिक जाते हैं, इसका उदाहरण है यह चुनाव। रुक्मा और सक्सेना आगजनी और बिसू की हत्या के सारे प्रमाण लेकर दिल्ली जा रहे थे। पर वहाँ भी क्या होना था। कुछ दिन पेपरबाजी होती और शेष मामला दबा दिया जाता है।

'महाभोज' का कथा- संसार पाठक की दृष्टि से निर्दोष नहीं है। भूगोल और काल की दृष्टिसे इसमें काफ़ी कमियाँ है। इसे उपन्यास कहने के बजाए गोपालराय तो कहते हैं इसे 'नाटकीय उपन्यास' कहा जाए। नाटक के रुप में जब हम इसे देखेंगे तो इसके पात्र बड़े सजीव, काईयाँ, छद्म और बेजोड नज़र आयेंगे। दा साहब, सुकूल बाबू, जोरावर, बिसेसर, बिन्दा आदि पात्र बेहद सजीव और जीवन्त लगते हैं। गाँव के ग़रीब हरिजन के रुप में हीरा का चरित्र जीता जागता चित्रित किया है। नाटक में भी यही पात्र बरसों तक दर्शको की याद में घर करके रहता है। स्त्री पात्रों की निहायत कमी खटकती है।

'महाभोज' में दलित समाज की पीड़ा और संघर्ष को उतना मुखर स्पेस नहीं मिला है, अत: न तो वह मार्क्सवादी आलोचकों को संतुष्ट कर पाया और न ग़ैर मार्क्सवादियों को। परन्तु फिर भी 'महाभोज' काफ़ी लोकप्रिय रहा। कारण उसकी पठनीयता पर पाठक महत्व देते हैं। यह पठनियता इस बात पर निर्भर होती है कि

उपन्यास में पाठक का परिवेश और उसकी अपनी ज़िन्दगी का सच कितनी सच्चाई और अनुभूति की तीव्रता के साथ व्यक्त हुआ है। 'महाभोज' महान उपन्यास नहीं है फिर भी वह लोकप्रिय है। वह महान क्यों नहीं है इसपर विचार करने पर कई बातें सामने आती हैं।

दूसरी बात लगभग छह हजार शब्दों से थोडा ज़्यादा यह उपन्यास लघु उपन्यासों से थोडा बड़ा है। इसलिए लेखिका ने इसमें संकेतों का अधिक प्रयोग किया है। मन्नू भण्डारी ने महाकाव्यात्मक उपन्यास न लिखकर नाटकीय उपन्यास लिखा। इसलिए कथ्य में मर्यादा आ गयी। प्रभाव की दृष्टि से देखा जाए तो इसमें एकलता, गहनता और तीव्रता बहुत ज़्यादा है। इसमे स्थान, काल और कथा का अन्विती जबरदस्त है। अमाल अल्लाना ने जैसे ही कहा कि यदि इसका नाट्यरुपान्तर किया जाए तो वह इसका मंचन करेगी। मंचन जब किया तब वह इतना सफल हुआ कि लोग उपन्यास को भुलकर नाटक को याद रख सके। बी.बी.सी. लन्दन से इस का प्रसारण किया गया। लोकप्रियता का यह भी एक कारण है।

'काल' की दृष्टि से देखा जाए तो इसका फैलाव सिर्फ बीस दिनों का है। स्थान अनाम शहर और सरोहा गाँव है। सेटिंग रंगमंच के अनुकूल है। चालीस पृष्ठों तक तो थाने की ही सेटिंग चलती है। कथा सिर्फ इतनी है कि सरोहा गाँव में जोरावर नामक जाट हरिजन युवक बिसू की हत्या कर देता है। विरोधी पक्ष इसी घटना से लाभ उठाकर उपचुनाव जितना चाहते हैं, पर सत्ताधारी पक्ष के मुख्यमंत्री अपनी चालाकी से इसे विफल कर देते हैं। इतनी-सी कथा का प्रत्येक प्रसंग एक दृश्य का रुप धारण कर लेता है। ये दृश्य अभिनेताओं के सभी प्रकार के अभिनयों का सजीव रुप धारण कर लेता है। रंगनिर्देश की भूमिका ही नहीं पूरा नाटक रंगमंच के कलाकारों के साथ बैठकर लिखा गया है, इसलिए 'महाभोज' एक सफल नाटकीय उपन्यास बन जाता है।

'महाभोज' उपन्यास में अधिकांश जगहों पर संकेत दिए हैं जो पाठकों को सर्जक बनाते हैं। अच्छे उपन्यास की यही पहचान है कि वह पाठकों को भी सर्जक बनाए। इस उपन्यास के संवाद पात्रों के मन:संसार का उद्घाटन ही नहीं करते अपितु कथा के सूत्रों को भी प्रदान करते हैं। कभी -कभी तो एकाद वाक्यही इतनी प्रभावशाली है कि पाठकों की चेतना पर अंत तक विद्यमान रहता है। जैसे- बिसू की लाश का वर्णन।

उपन्यास को नाटकीय और प्रभावशाली बनाने में मन्नूजी की भाषा का बड़ा योगदान है। उनकी भाषा व्यंग्य से भरी है। गहन अर्थ से भरे मौन की भाषा का भी बहुत सफल प्रयोग लेखिकाने किया है। ऐसे-ऐसे वाक्य है जिसमें अर्थ की कई परते एक साथ उद्घाटित होती है। 'महाभोज' को जब एक पाठय-पुस्तक (टेक्स्ट) के रुप में पढ़ते है, तब कई छोटी-बड़ी गलतियाँ दिखाई देती है। पृष्ठ ७ पर आगजनी का वर्णन है। गाँव में रात में आग लगे, नौ-नौ आदमी जलकर मरें और गाववालों को दूसरे दिन पता चले। ऐसे कैसे संभव होगा? गाववाले क्या घोडे बेचकर सो रहे थे। यह लेखिका की पहली बड़ी भूल है। एक स्थान पर वह लिखती है कि, जोरावर के वोट ४५ प्रतिशत है तो दूसरे स्थान पर वह ३५ प्रतिशत बताती है। पार्टी अध्यक्ष अप्पा साहब असंतुष्ट दल के नेता लोचन भैया से जब बात करते हैं तब वहाँ राव और चौधरी की उपस्थिति नहीं बतायी। बाद में एक वाक्य लिखा है जिसकें व्दारा पता चलता है दोनों अप्पासाहब की बातें ध्यान से सुन रहे थे। कहाँ बैठकर सुन रहे थे? अप्पासाहेब जब अप्रत्यक्ष रुप से उनकी निंदा कर रहे थे तब वे चुप क्यों बैठे?

समग्रावलोचन के आधार पर पाठक सारी छोटी-मोटी भूलों को माफ कर उपन्यास का आनन्द लुटता है। वह जानता है कि नाटकीय उपन्यास होने के कारण इसका फलक और विजन दोनों ही सिमित है। इसकी महानता नाटकीय होने में है। यह अपने समय का एक निर्मम परन्तु अधूरा दस्तावेज है जो नाटकीय प्रभाव से युक्त होने पर भी पाठकों पर अपनी अमिट छाप छोडता है। लाखों की संख्या में इसका पाठक वर्ग इस बात का प्रमाण है कि 'महाभोज' के कथ्य और शिल्प में दम है अन्यथा हजारों उपन्यासों की दौड मे यह शीर्षस्थ स्थान पर न होता।

प्रो.तिवारी के अनुसार 'महाभोज' महत्वाकांक्षी उपन्यास है ही नहीं। कारण इसमें उठायी गयी समस्याएँ सांकेतिक है। वे भले ही नाटक के लिए योग्य हो, उपन्यास के लिए नहीं। उनके अनुसार "मन्नूजी के लेखन में साक्ष्य उस प्रसंग, अनुपात और बलाघात के साथ नहीं है कि उनका लेखन उतनाही गहरा और सार्थक प्रभाव डाल

सके। वे उनकी (प्रेमचन्द, व्दिवेदी, रेणु) पाँत ज़रुर है यथार्थ के प्रति सहज और ईमानदार होने के कारण, किन्तु वास्तविकता की अन्तर्प्रवेशी जटिल और अनुभव की शक्तिशाली संभावनाओं से समृध्द कलानुभूति तो वे प्राप्त कर चुकी है, ऐसा कहने में किसी को भी संकोच होगा। ''

हिन्दी में राजनीतिक उपन्यासों का अकाल इसलिए रहा है कि वैचारिक और व्यावहारिक धरातल पर अस्थिरता का ग्राफ तेजी से बदलता है। उपन्यासकारों के लिए यह एक प्रकार की चुनौती होती है। मन्नू भण्डारीजी ने इस क्षेत्र की ओर इसलिए कदम उठाया कि घर में आग लगने पर भी अंतर्जगत में बने रहना उन्हें मंजूर नहीं था। उनके अनुसार मुल नैतिक आधारों से च्युत राजनीति के सिध्दान्त और नीतियाँ केवल जाली सिक्के है, जो धीरे-धीरे बाजार से खरे सिक्कों को बाहर कर देते हैं।

ऐसे उपन्यास को लिखनेवालों के लिए वर्तमान समय चुनौती भरा है। अंतर्विरोध पहले से कहीं ज़्यादा साफ और गहरे हैं, चारित्रिक कमज़ोरीयाँ कही ज़्यादा उभारपर है, निजी हित-लाभ और स्वार्थपरता कहीं ज़्यादा 'लॉजिक' से लैस है लेकिन रचनाकार है कि सत्य से उतना ही ज़्यादा जी चुरा रहे हैं। वे स्वयं भी इस समाज का अभिन्न अंग है। जोखिम बिना तो कोई रचना का सृजन नहीं होता। होता भी होगा तो वह अधुरी और झूठी है।

यह उपन्यास 'परिवेश के प्रति ऋणशोध है।' उस परिवेश के प्रति जो व्यक्ति और नियती को निर्धारीत करता है। परिवेश का अर्थ ऐसा माहौल हो, जिस्मे राजनीति हवा की तरह घुल गई है और साँस के साथ भीतर उतरकर ज़हर बन गयी है। आज राजनीति का अर्थ अनिती हो गया है। सत्ता की शतरंज आदमी का मोहरा बनाकर अपना कार्य सिध्द करती हो, वहाँ पर परिवेश के प्रति ऋणशोध का अर्थ शून्य हो जाता है। आज राजनीति, राजनीतिक दलों के सिध्दान्तों और नीतियों से परे की चीज़ है। इसलिए आदमी और उसकी आदमीयता इस राजनीति से कोसों दूर है। अर्चना वर्मा जैसे विव्दतजनों ने 'महाभोज' को सही अर्थो में आदमी और उसके जीवन के अधिकार की पक्षधर माना है और जीवन की रक्षा के लिए राजनीति को पुन: उसके नैतिक आधारों पर आसीन करने की मांग की है। सफलता या असफलता की चिन्ता मन्नूजी ने की नहीं है। उनका उद्देश पाठकों को अवयेर करना है। बी.बी.सी. से इसका प्रसारण होना ही रचना की गरीमा का प्रतिक है।

संदर्भ :

१. देशमाने पार्वती भगवानराव- शशिप्रभाशास्त्रीर: व्यक्तित्व एवं कृतित्व प्र.सं.२००६, अन्नपुर्णा प्रकाशन, साकेतनगर, कानपुर
२. पवार सुभाष- कथाकार उषा प्रियंवदा-प्र.सं.२०१० विद्या प्रकाशन, गुजैनी, कानपुर
३. पवार रामेश्वर- नवम् दशक की कहानियों का समाजशास्त्रीय अध्ययन प्र.सं.२००८, विकास प्रकाशन, बर्रा, कानपुर
४. रेखा मुले- कथाकार चन्द्रकांता- प्र.सं.२००५, विकास प्रकाशन, बर्रा, कानपुर
५. विठ्ठलदास सारडा- सातवे दशकोत्तर कहानियों में पारिवारीक सम्बन्ध प्र.स.२००३, अन्नपुर्णा प्रकाशन, साकेतनगर, कानपुर
६. प्रेमचन्द- कुछ विचार-१९७३, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद
७. श्यामसुन्दरदास- साहित्यालोचन- १९६५, इण्डीयन प्रेस पब्लिकेशन्स प्रा.लि. प्रयाग।
८. डॉ.शिवकुमार मिश्र- मार्क्सवादी साहित्य चिन्तन- १९७३ - मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी- भोपाल।